अध्याय 7

अंतिम दौर – दो

राष्ट्रीयता बनाम साम्राज्यवाद

मध्य वर्ग की बेबसी – गांधी का आगमन

महात्मा गांधी

पहला विश्व युद्ध आरंभ हुआ। राजनीति उतार पर थी। इसका कारण था कांग्रेस का तथाकथित गरम दल और नरम दल में विभाजन और युद्ध-काल में लागू किए गए नियम और प्रतिबंध।

अंततः विश्व युद्ध समाप्त हुआ और शांति के परिणामस्वरूप देश में राहत और प्रगति की बजाय दमनकारी कानून और पंजाब में मार्शल लॉ लागू हुआ। जनता में अपमान की कड़वाहट और क्रोध का आवेश भर गया। ऐसे समय में जब हमारे देश के पौरुष को लगातार कुचला जा रहा था; शोषण की लगातार निर्मम प्रक्रिया से हमारी गरीबी बढ़ रही थी और हमारी जीवन शक्ति क्षीण हो रही थी। किसान वर्ग दब्बू और भयभीत था, कारखाने के मज़दूरों की स्थिति

भी बेहतर नहीं थी। मध्य वर्ग और बुद्धिजीवी लोग, जो इस सर्वग्रासी अंधकार में आकाशदीप हो सकते थे, खुद इस सर्वव्यापी उदासी में डूबे हुए थे।

और तब गांधी का आगमन हुआ। वे ताज़ा हवा के ऐसे झोंके की तरह आए जिसने फैलकर हमें गहरी साँस लेने के योग्य बनाया। वे ऊपर से अवतरित नहीं हुए थे, वे भारत की करोड़ों की आबादी के बीच से ही निकलकर आए थे। वे उन्हीं की भाषा बोलते थे और लगातार उनकी शोचनीय स्थिति की ओर ध्यान आकर्षित करते थे। उन्होंने हमसे कहा कि इन मज़दूरों और किसानों की पीठ से उतर जाओ, तुम सब जो उनके शोषण के सहारे ज़िंदा हो उस व्यवस्था को समाप्त कर दो जो इस गरीबी और दुर्गति की जड़ है। उन्होंने जो कुछ कहा हमने उनमें से ज़्यादातर बातों को आंशिक रूप में माना और कभी-कभी बिलकुल नहीं माना। लेकिन यह एक गौण बात थी। उनकी शिक्षा का सार था – निर्भयता और सत्य और इनसे जुड़ा हुआ कर्म। वे हमेशा सामान्य जनता की खुशहाली पर नज़र रखते थे। लेकिन ब्रिटिश शासन के अधीन सबसे प्रबल एहसास था 'भय'–व्यापक दमनकारी, दमघोंटू भय – सेना का, पुलिस का, दूर-दूर तक फैले हुए खुफ़िया विभाग का भय, अफ़सरों व ज़मींदार के कारिंदों का भय, साहूकार का भय, बेकारी और भुखमरी का भय, जो हमेशा करीब खड़ा रहता था। चारों तरफ़ फैले इस डर के खिलाफ़ ही गांधी की शांत किंतु दृढ़ आवाज़ उठी "डरो मत।"

इस तरह लोगों के ऊपर से भय का काला लबादा उठ गया, पूरी तरह तो नहीं पर आश्चर्यजनक मात्रा में। क्योंकि भय का झूठ से नज़दीक का संबंध होता है। जैसे-जैसे झूठ और लुक-छिपकर काम करने की ज़रूरत कम होती गई वैसे-वैसे एक व्यापक परिवर्तन दिखाई देने लगा। यह मनोवैज्ञानिक परिवर्तन था।

गांधी ने भारत में करोड़ों लोगों को अलग-अलग मात्रा में प्रभावित किया। कुछ लोगों ने अपने जीवन की पूरी बनावट को ही बदल लिया, कुछ पर आंशिक प्रभाव पड़ा, या फिर प्रभाव मिट गया, पर पूरी तरह नहीं। अलग-अलग लोगों में प्रतिक्रियाएँ भी अलग-अलग हुई और हर आदमी के पास इस सवाल का अलग-अलग जवाब था।

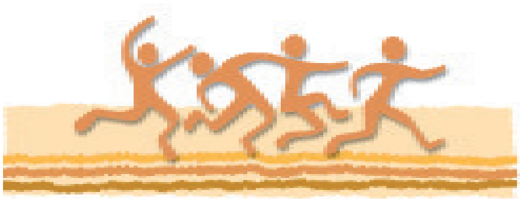

गांधी जी के नेतृत्व में कांग्रेस सक्रिय

गांधी जी ने पहली बार कांग्रेस के संगठन में प्रवेश किया और तत्काल उसके संविधान में पूरी तरह परिवर्तन ला दिया। उन्होंने उसे लोकतांत्रिक और लोक संगठन बनाया। अब उसमें किसानों ने प्रवेश किया और अपने नए रूप में वह एक विशाल किसान-संगठन दिखाई देने लगा, जिसमें मध्य वर्ग के लोग संख्या में छितरे हुए थे लेकिन उनका ज़ोर काफ़ी था। अब उसका खेतिहर चरित्र बढ़ने लगा। औद्योगिक मज़दूर भी उसमें आए लेकिन अपनी व्यक्तिगत हैसियत में, अलग से संगठित रूप में नहीं।

इस संगठन का लक्ष्य और आधार था सक्रियता। ऐसी सक्रियता जिसका आधार शांतिपूर्ण पद्धति थी। अब तक जो विकल्प थे उसमें या तो केवल बातचीत करना और प्रस्ताव पारित करना था अथवा हिंसक कार्यवाही करना। इन दोनों तरीकों को एक तरफ़ हटा दिया और हिंसा की विशेष रूप से निंदा की गई क्योंकि वह कांग्रेस की मूल नीति के खिलाफ़ था। काम करने का एक नया तरीका निकाला गया, जो पूरी तरह शांतिपूर्ण था। लेकिन जिस बात को गलत समझा जाता था उसके आगे सिर झुकाना मंजूर नहीं किया गया। परिणामस्वरूप इस प्रक्रिया में होने वाली जो पीड़ा और कष्ट थे उन्हें खुशी से स्वीकार किया गया। गांधी जी विचित्र प्रकार के शांतिवादी थे, वे गतिशील ऊर्जा से भरे सक्रिय व्यक्ति थे। उन्होंने न कभी भाग्य से हार मानी न ऐसी बात के सामने सिर झुकाया जिसे वे बुरा समझते थे। उनमें मुकाबला करने की भरपूर शक्ति थी गरचे वे ऐसा शांतिपूर्ण और शिष्ट ढंग से करते थे।

सक्रियता का आह्वान दोहरा था। ज़ाहिर है कि विदेशी शासन को चुनौती देने और उसका मुकाबला करने की सक्रियता तो थी ही, अपनी खुद की सामाजिक बुराइयों के विरुद्ध लड़ने की सक्रियता भी थी। कांग्रेस के मुख्य आधार थे राष्ट्रीय एकता जिसमें अल्पसंख्यकों की समस्याओं को हल करना और दलित जातियों को ऊपर उठाने के साथ छुआछूत के अभिशाप को खत्म करना शामिल थे।

गांधी जी ने अंग्रेज़ी शासन की बुनियादों पर चोट की। उन्होंने कहा कि खिताब छोड़ देने चाहिए। गरचे कम लोगों ने खिताब छोड़े, लेकिन अंग्रेज़ों द्वारा दिए गए इन खिताबों के लिए आम जनता में इज़्ज़त समाप्त हो गई और ये पतन के प्रतीक बन गए। नए मापदंड और मूल्य स्थापित हुए। वायसराय के दरबार और रजवाड़ों की शान-शौकत जो इतना अधिक प्रभावित करती थी, बेहद उपहासास्पद, अभद्र और शर्मनाक लगने लगी क्योंकि वह आम जनता की गरीबी और कष्टों से घिरी हुई थी। धनी लोगों ने भी कम-से-कम ऊपरी तौर पर, उनमें से बहुतों ने, सादा रहन-सहन अपना लिया। वेशभूषा में उनमें और मामूली लोगों में कोई अंतर नहीं रह गया।

कांग्रेस के पुराने नेता, जो एक अलग और ज़्यादा निष्क्रिय परंपरा में पले थे, इन नए तौर-तरीकों को आसानी से नहीं अपना सके और आम जनता की इस उठान से उन्हें परेशानी हुई। लेकिन जो हवा पूरे देश में बही, इन लोगों में भी उसका नशा कुछ दूर तक भर गया।

ऐसा कहा जाता है कि भारतीय मानस मूलतः निवृत्तिमार्गी है। पर गांधी जी इस निवृत्तिमार्ग के एकदम विपरीत थे। भारतीय जनता की निष्क्रियता के विरुद्ध संघर्ष करने और उसे बदलने के लिए जितना काम उन्होंने किया, किसी दूसरे ने नहीं किया।

उन्होंने हमें गाँवों की ओर भेजा और कर्म के इस नए संदेश को ले जाने वाले अनगिनत दूतों की गतिविधियों से देहात में चहल-पहल मच गई। किसानों को झकझोरा गया। हम लोगों पर प्रभाव दूसरे ढंग का था। हमने पहली बार ग्रामीण को उसकी कच्ची झोंपड़ी में भूख की उस छाया के साथ जो हमेशा उसका पीछा करती है, चिपटे देखा। हमने इन यात्राओं से भारतीय अर्थ-व्यवस्था के बारे में पुस्तकों और विद्वत्तापूर्ण भाषणों की तुलना में अधिक जाना। जो भावात्मक अनुभव हमें पहले हो चुके थे, उन्हें बल मिला।

आर्थिक, सामाजिक और दूसरे मामलों में गांधी जी के विचार बहुत सख्त थे। उन्होंने इन सबको कांग्रेस पर लादने की कोशिश नहीं की। इनमें से कुछ विचारों को उन्होंने कांग्रेस में पैठाने की कोशिश की। वे सावधानी से आगे बढ़े क्योंकि वे जनता को अपने साथ ले चलना चाहते थे। बहुत से

लोगों ने उनके सभी विचारों को स्वीकार नहीं किया, कुछ लोगों का उनके बुनियादी दृष्टिकोण से मतभेद था। दो तरह से, उनके विचारों का अस्पष्ट किंतु पर्याप्त प्रभाव पड़ा। हर बात की बुनियादी कसौटी यह थी कि उससे आम जनता का भला कहाँ तक होता है और दूसरे यह कि लक्ष्य भले ही सही हो, लेकिन साधन हमेशा महत्त्वपूर्ण होते हैं और उनकी अनदेखी नहीं की जा सकती।

गांधी मूलत: धर्मप्राण व्यक्ति हैं। वे अपने अंतरतम की गहराइयों तक हिंदू हैं, लेकिन धर्म संबंधी उनकी अवधारणा का किसी सिद्धांत, परंपरा या कर्मकांड से कोई संबंध नहीं है। उनका बुनियादी सरोकार उन नैतिक नियमों में उनके दृढ़ विश्वास से है जिन्हें वे सत्य या प्रेम के नियम कहते हैं। सत्य और अहिंसा, इन दोनों शब्दों को वे एक ही अर्थ के लिए अदल-बदल कर इस्तेमाल करते हैं। उनका दावा है कि वे हिंदू धर्म की मूल भावना को समझते हैं। उन्होंने हर उस सिद्धांत और व्यवहार को नामंज़ूर किया जो उनकी आदर्शवादी व्याख्या से मेल नहीं खाता था। वे सबसे ऊपर नैतिक नियमों की सत्ता मानते हैं, वह भी उस रूप में जिस रूप में उन्होंने खुद उन्हें समझा है।

जीवन के अन्य पक्षों की ही तरह औसत आदमी के लिए इससे राजनीति में परेशानी और अक्सर गलतफ़हमी पैदा होती है। लेकिन कोई बाधा उन्हें अपनी पसंद के सीधे रास्ते से नहीं हटा पाती, क्योंकि एक सीमा के भीतर वे बराबर अपने को बदलती हुई स्थिति के अनुरूप ढालते चलते हैं। वे हमेशा खुद अपने से शुरुआत करते हैं। उनकी कथनी और करनी में इतना मेल होता है जितना हाथ और दस्ताने में।

जिस भारत को वे अपनी इच्छाओं और आदर्शों के अनुसार ढालने जा रहे थे उसके बारे में उनका विचार था – "मैं एक ऐसे भारत के लिए काम करूँगा जिसमें गरीब-से-गरीब व्यक्ति भी यह महसूस करेगा कि यह उसका देश है जिसके निर्माण में उसकी आवाज़ प्रभावी है। एक ऐसा भारत जिसमें लोगों के ऊँचे-नीचे वर्ग नहीं होंगे। ऐसा भारत जिसमें सब जातियाँ पूरे समभाव से रहेंगी...ऐसे भारत में छुआछूत या नशीली मदिरा और दवाइयों के अभिशाप के लिए कोई जगह नहीं होगी...स्त्रियों को पुरुषों के समान

अधिकार होंगे...यही मेरे सपनों का भारत है।" जहाँ उन्हें अपनी हिंदू विरासत का गर्व था, वहाँ उन्होंने हिंदू धर्म को एक सार्वभौमिक बाना पहनाने का प्रयत्न किया और सत्य के घेरे में सब धर्मों को शामिल कर लिया। उन्होंने अपनी सांस्कृतिक विरासत को संकीर्ण बनाने से इंकार कर दिया।

उन्होंने लिखा–"भारतीय संस्कृति न हिंदू है न इस्लाम, न पूरी तरह से कुछ और है। यह सबका मिला-जुला रूप है।" उन्होंने आगे लिखा–"मैं चाहता हूँ कि मेरे घर के पास सारे देशों की संस्कृति जितनी स्वतंत्रता से संभव हो उतनी स्वतंत्रता से फैले। लेकिन उसमें से कोई मेरे पैर उखाड़ दे, मुझे यह मंज़ूर नहीं।" आधुनिक विचारधाराओं से प्रभावित होकर उन्होंने कभी अपनी जड़ों को नहीं छोड़ा और उन्हें मज़बूती से पकड़े रखा।

डूबे हुए लोगों को उठाने की लगन के सामने और सभी बातों की तरह धर्म का भी उनके लिए गौण स्थान था। "एक अधभूखे राष्ट्र का न कोई धर्म हो सकता है, न कला, न संगठन। करोड़ों भूखे मरते लोगों के लिए जो कुछ भी उपयोगी हो सकता है वही मेरे लिए सुंदर है। आज हम सबसे पहले ज़िंदगी की ज़रूरी चीज़ें दें और उसके बाद जीवन के लिए शोभा की वस्तुएँ और अलंकार अपने आप आ जाएँगे...।" उन्होंने कहा, "मेरी आकांक्षा है हर आँख से हर आँसू को पोंछ लेना।"

यह आश्चर्य की बात नहीं है कि इस अद्‌भुत रूप से तेजस्वी आदमी ने, जिसका पैमाना सबसे गरीब आदमी है, भारत की सामान्य जनता को सम्मोहित कर लिया और उन्हें चुंबक की तरह आकर्षित किया। वे उनको अतीत के साथ भविष्य को जोड़ने वाली कड़ी की तरह जान पड़े। उन्होंने केवल अपने अनुयायियों में ही नहीं, बल्कि अपने विरोधियों में भी और उन तमाम तटस्थ लोगों में जो इस बारे में निश्चय नहीं कर पाते थे कि क्या सोचना और क्या करना है, एक मनोवैज्ञानिक क्रांति पैदा की।

कांग्रेस पर गांधी जी का प्रभुत्व था, लेकिन यह खास किस्म का अधिकार था, क्योंकि कांग्रेस एक सक्रिय, विद्रोही, अनेक पक्षीय संगठन था जिसमें तरह-तरह की राय होती थी और उसे आसानी से इधर-उधर नहीं ले जाया जा सकता था। गांधी जी अक्सर दूसरों की इच्छा के सामने झुक जाते थे। कभी-कभी वे अपने विरुद्ध फैसलों को भी स्वीकार कर लेते थे।

इस तरह सन् 1920 में नेशनल कांग्रेस ने और काफ़ी हद तक देश ने इस नए रास्ते को अपनाया और ब्रिटिश सरकार के खिलाफ़ बार-बार संघर्ष किया।

एक के बाद दूसरा सविनय अवज्ञा आंदोलन हुआ और उसके कारण बहुत कष्ट उठाने पड़े, लेकिन इन मुसीबतों को चूँकि खुद आमंत्रित किया गया था इसलिए उनसे शक्ति ही मिली।

जब सविनय अवज्ञा आंदोलन जारी नहीं था, तब भी भारत में ब्रिटिश सरकारी तंत्र से असहयोग जारी था, गरचे उसका आक्रामक चरित्र समाप्त हो गया था।

अल्पसंख्यकों की समस्या – मुस्लिम लीग – मोहम्मद अली जिन्ना

जिसे सांप्रदायिक समस्या कहा जाता था, वह अल्पसंख्यकों के अधिकारों के साथ इस तरह तालमेल बैठाना था ताकि उन्हें बहुसंख्यकों के खिलाफ़ पर्याप्त संरक्षण मिल सके। भारत के अल्पसंख्यक यूरोप की तरह जातीय या राष्ट्रीय अल्पसंख्यक नहीं, वे धार्मिक अल्पसंख्यक हैं। जातीय दृष्टि से भारत में एक विचित्र मिश्रण है, पर जातीय सवाल भारत में न कभी उठे हैं न उठ सकते हैं। धर्म इन जातीय विभिन्नताओं के ऊपर है। जातियाँ या तो एक दूसरे में मिल जाती हैं या उनमें अंतर करना कठिन होता है। ज़ाहिर है कि धार्मिक दीवारें स्थायी नहीं होतीं और जो व्यक्ति अपना धर्म बदलता है उसकी जातीय पृष्ठभूमि या उसकी जातीय और भाषिक विरासत नष्ट नहीं हो जाती। परंतु राजनीतिक मामलों में, धर्म का स्थान सांप्रदायिकता ने ले लिया है। यह एक संकीर्ण समुदाय

जिन्ना और गांधी

होता है जो मानसिक रूप से अपना आधार किसी धार्मिक वर्ग को बनाता है, किंतु वास्तव में उसकी दिलचस्पी राजनीतिक शक्ति और अपने समुदाय को बढ़ावा देने में होती है।

कांग्रेस सांप्रदायिक हल निकालने के लिए उत्सुक और चिंतित थी ताकि प्रगति के मार्ग की रुकावट को दूर किया जा सके। कांग्रेस की सदस्य-संख्या में मुख्य रूप से हिंदू थे, लेकिन उनमें बड़ी संख्या में मुसलमानों के अलावा दूसरे तमाम धर्मों के लोग जैसे सिख, ईसाई आदि भी शामिल थे। इसलिए राष्ट्रीय दृष्टिकोण से विचार करना उसकी मजबूरी थी। उसके लिए सबसे बड़ी समस्या थी राष्ट्रीय स्वाधीनता और एक स्वतंत्र लोकतांत्रिक राज्य की स्थापना। कांग्रेस निस्संदेह एका चाहती थी और उसे मानकर चलती थी, पर उसे ऐसा कोई कारण दिखाई नहीं पड़ता था जिसकी वजह से भारत के सांस्कृतिक जीवन की संपन्नता और विविधता को सिर्फ़ एक साँचे में कस दिया जाए। इसलिए काफ़ी दूर तक प्रादेशिक स्वायत्तता स्वीकार कर ली गई और विभिन्न समुदायों की स्वतंत्रता और सांस्कृतिक विकास की सुरक्षा के तरीकों पर भी सहमति हो गई। दो बुनियादी प्रश्नों पर कांग्रेस अडिग रही—राष्ट्रीय एकता और लोकतंत्र। आधी शताब्दी तक अपने विकास के समय वह इन पर बराबर बल देती रही।

गुज़रे ज़माने में, कम-से-कम सिद्धांत में, ब्रिटिश सरकार ने भी भारतीय एकता और लोकतंत्र का समर्थन किया था। लेकिन उसकी नीतियाँ हमें सीधे उस दिशा में ले गईं जहाँ इन दोनों का ही अस्वीकार था। अगस्त 1940 ई. में कांग्रेस ने मजबूर होकर घोषणा की कि भारत में ब्रिटिश सरकार की नीति 'जनजीवन में संघर्ष और फूट को प्रत्यक्ष रूप से उकसाती और भड़काती है।' ब्रिटिश सरकार के ज़िम्मेदार लोग खुल्लमखुल्ला हमसे यह कहने लगे कि शायद किसी नयी व्यवस्था के पक्ष में भारत की एकता की बलि चढ़ानी पड़े और यह भी कि भारत के लिए लोकतंत्र ठीक नहीं हैं। हम सांप्रदायिक समस्या का कोई ऐसा हल न ढूँढ़ सके जो सब पार्टियों को मंज़ूर हो।

यह साफ़ ज़ाहिर है कि भारत में बहुत से सामंती और प्रतिक्रियावादी समुदाय हैं, इनमें कुछ यहाँ की ज़मीन की उपज हैं और कुछ को जन्म देकर उनका पोषण अंग्रेज़ों ने किया है। संख्या की दृष्टि से वे भले ही कम हों, लेकिन उनके पास ब्रिटिश सत्ता की मदद है।

बीते हुए दिनों में अंग्रेज़ों की नीति मुस्लिम लीग और हिंदू महासभा के मतभेदों को प्रोत्साहित करके उन पर बल देने की और सांप्रदायिक संगठनों को कांग्रेस के विरुद्ध महत्त्व देने की रही।

मिस्टर जिन्ना की माँग का आधार एक नया सिद्धांत था, जिसकी उन्होंने हाल ही में घोषणा की थी कि भारत में दो राष्ट्र हैं, हिंदू और मुसलमान। दो ही क्यों? मैं नहीं जानता, क्योंकि अगर राष्ट्रीयता का आधार धर्म है, तब तो भारत में बहुत से राष्ट्र हैं। यहाँ तक कहा जा सकता है कि अतीत में भारत का विकास एक बहुराष्ट्रीय राज्य के रूप में हुआ और उसमें राष्ट्रीय चेतना धीरे-धीरे आई।

मिस्टर जिन्ना के दो राष्ट्रों के सिद्धांत से पाकिस्तान का या भारत के विभाजन की अवधारणा का विकास हुआ। लेकिन उससे 'दो-राष्ट्रों' की समस्या का हल नहीं हुआ, क्योंकि वे तो पूरे देश में थे।